ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-10* November- 2017
Innovation The Research Concept

भीष्म साहनी कृत 'कड़ियाँ' उपन्यास में सामाजिक चेतना

पिण्टू रावल
विभागाध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
गांधी आर्दश कॉलेज,
समालखा, पानीपत

सारांश

''कड़िया'' उपन्यास एक ऐसे तनावग्रस्त मध्यवर्गीय दाम्पत्य जीवन की कहानी है जिसमें हर सम्बन्ध टूटकर बिखर गया है। महेन्द्र स्त्री के असफल प्रेम में फंसकर अपने घर को तोड़ देता है, बच्चे को भी अपराधी प्रवृत्ति का बना देता है। उसकी पत्नी भी पागलपन का शिकार हो जाती है और अन्त में दूसरे बच्चे को जन्म देकर एवं ठीक होकर स्वावलम्बी जीवनयापन करने लगती है, लेकिन महेन्द्र स्वतंत्र रहकर भी अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ से मुक्त नहीं हो पाता। न ही उसे कहीं भी आत्मिक शांति मिल पाती है। वह कामतृप्त एवं हीनावस्था में सब कुछ बर्बाद कर डालता है और पाठक को अपनी लम्पटता एवं धूर्तता का परिचय देता है। नाटा उसे यथार्थ दृष्टिकोण बताता है और व्यंग्य के माध्यम से उसके शराफत के मुखौटे को उतार फेंक देता है। प्रमिला भारतीय संस्कारों में पली हिन्दी नारी है जो महेन्द्र के अधूरेपन का शिकार होकर प्रताड़ना सहन करती है, लेकिन अन्त में आत्मनिर्भर बन जाती है और एक जागरूक एवं संघर्ष से जूझकर सफल होने वाली प्रगतिशील नारी की छाप पाठक पर छोड़ती है।

मुख्य शब्द : तनावग्रस्त, कामवासना, विघटन, परिवार, अन्तर्द्वन्द्व, प्रताड़ना।

प्रस्तावना

कड़िया भीष्म साहीन जी का सन् 1970 में प्रकाशित दूसरा उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक नें सामाजिक चेतना के विभिन्न आयामों का उल्लेख करने का प्रयत्न किया है। एक आधुनिक परिवेश में जी रहे पति–पत्नी के पारिवारिक जीवन का बड़ा सटीक चित्रण किया है सबसे पहले हम समाज व चेतना का अर्थ जानने का प्रयत्न करते है और उसके बाद सामाजिक चेतना के विविध आयामों पर प्रकाश डालेंगे।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोधपत्र का उद्देश्य भीष्म साहनी जी कृत 'कड़िया' उपन्यास में सामाजिक चेतना के विविध आयामों का अध्ययन करना है।

समाज का अर्थ

समाज का अर्थ है– '' एक ही स्थान पर रहने वाले या एक ही प्रकार का व्यवसाय करने वाले वे लोग जो मिलकर अपना एक अलग समूह बनाते है।''[1]

श्री शम्भुरत्न त्रिपाठी ने समाज को ऐसे परिभाषित किया है– ''समाज का सामान्य अर्थ व्यक्तियों का समूह है। मनुष्य मनुष्यों से पृथक् रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में असमर्थ होता है। अपने अस्तित्व की रक्षा करने हेतु उसे अपने आसपास के व्यक्यितयों के संबंध स्थापित करना आवश्यक है। व्यक्तियों के इन सामाजिक सम्बन्धों को समाज कहते है।''[2]

विभिन्न शब्द–कोशों में ''समाज'' शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है–

समाज–सम–अज, मीटिंग विथ, फॉलिंग इनविथ, ए मीटिंग, असैम्बली।[3]

अंग्रेंजी भाषा में ''समाज'' शब्द के समानार्थक शब्द ''सोसायटी'' का अर्थ है धर्म, परोपकार, संस्कृति, विज्ञान, राजनीति, देशभक्ति या अन्य उद्देश्यों हेतु परस्पर सम्बद्ध व्यक्तियों का संगठित समूह।[4]

पाश्चात्य विद्वान सेम्युअल कोइगं ने समाज की अत्यन्त व्यापक परिभाषा दी है–

''समाज ऐसे लोगों का एक समूह है जो सामान्य परम्पराओं, रिवाजों तथा जीवन पद्धतियों तथा सामान्य संस्कृति के कारण संगठित होते है एंव जिसकें सदस्यों में समाज से संस्कृति की भावना भी बनी रहती है।''[5]

अतः यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मानव समाज ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो संस्कृति, परम्पराओं, जीवन–मूल्यों तथा जीवन – व्यवहारों की समानता के कारण परस्पर सम्बद्ध रहते है।

चेतना का अर्थ

''चेतना'' शब्द का शाब्दिक अर्थ–संज्ञानार्थक चित् धातु में ''युच प्रत्यय'' लगाने से ''चेतना'' शब्द बनता है। ''न्यास'' ग्रंथ में संज्ञान के अर्थ में ''चित्'' शब्द का प्रयोग किया गया है और कहा गया है कि जिसके (अर्थात मन की जिस वृत्ति या शक्ति) के द्वारा संज्ञान होता है, उसे चेतना कहते है।''[6]

मानक हिन्दी कोश के अनुसार चेतना मन की वह वृत्ति या शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक (अनुभूतियों, भावों, विचारों) आदि और बाह्य (घटनाओं, तत्त्वों या बातों) का अनुभव होता है।[7]

हिन्दी साहित्य कोश में ''चेतना'' शब्द को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि– चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है अर्थात् वस्तुओं, विषयों एवं व्यवहारों का ज्ञान।.....चेतना की प्रमुख विशेषताए है। निरन्तर परिवर्तनशीलता या प्रवाह, रस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में है, एक अविच्छिन एकता और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव वैचित्रय से प्रभावित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से विभिन्न विषयों की अलग–अलग समय पर चेतना होने पर भी हम सदा यह अनुभव करते हैं कि मैनें अमुक वस्तु देखी थी।[8]

चेतना मन की वह शक्ति है जो हमें मनोजगत के सूक्ष्म भावों का, विचारों के साथ–साथ बाह्य जगत के पदार्थों, विषयों और व्यवहारों का ज्ञान कराती है, अतीत को स्मरण कराती है, भले–बुरे की पहचान कराती है और निरन्तर गतिशील रहते हुए भी कभी विच्छिन्न नहीं होती।

सामाजिक चेतना का अर्थ

समाज एवं चेतना सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सामान्य परम्पराओं ,रीति–रिवाजों, आचार–व्यवहार की पद्धतियों के कारण परस्पर संगठित व्यक्तिओं के समूह तथा उसके विभिन्न वर्गों, उपवर्गो के जीवन, उनकी गतिविधियों, विविध क्रिया–कलापों, अभावों एवं विवशताओं, आशाओं एवं आकांक्षाओं, न्यूनताओं एवं उपलब्धियों के सम्बन्ध में जागरूकता बोध एवं सदासद्–विवेक तथा तज्जन्य प्रतिक्रिया सामाजिक चेतना कहलाती है।

अब हम 'कड़ियाँ' उपन्यास में निहित विविध आयामों पर चर्चा करते है।

पारिवारिक जीवन के संदर्भ में

परिवर्तित मूल्यों के युग में समाज की महत्वपूर्ण संस्था परिवार में भी विघटन लक्षित हुआ है। पारिवारिक सम्बन्धों में परम्परागत रूप से चौखटे को तोड़कर एक नया रूप धारण किया है। स्वतन्त्रता–पूर्व परिवार संयुक्त रूप में थे और सम्बन्धों की दृढ़ता संयुक्त परिवार में जांची जाती थी पर वर्तमान अर्थ प्रधान तन्त्र, प्रदर्शन प्रवृति, वैयक्तिक स्वतंत्रता ने परम्परागत परिवार संस्था को सबसे अधिक प्रभावित किया है। सम्बन्धों में भी दरारें आ गई है। पिता–पुत्र, माँ–बेटी, भाई–बहन, भाई–भाई जैसे सम्बन्धों में तो भावात्मकता न रहकर अर्थ के नाम पर बौद्धिकता आ गई है, परन्तु पति–पत्नी के संबंधों में भी परम्परागत आदर्श नहीं रह गया है। वे सम्बन्धों की ऊपरी परत बनाए रखने के लिए मुखौटा धारण करना जरूरी समझते है और मुखौटों के पीछे वह अपने अन्तस् में वास्तविकता को छिपाकर मानसिक संघर्ष से गुजरते हुए अपनी आत्मा की प्रताड़ना को सहते है।[9]

''कड़ियाँ'' में महेन्द्र और प्रमिला के पारिवारिक जीवन की बिल्कुल यही स्थिति है। उनमें आपसी निष्ठा की कमी है। महेन्द्र को अपनी पत्नी घरेलू किस्म को फूहड़ और सुस्त नजर आती है। उसे उसके हाथों एवं मुंह से बदबू आती है। जबकि उसे खूब सजी–धजी, चंचल, चुस्त लड़की पसन्द है। वह कहता है–''जब घर पर होता हूँ तो प्रमिला फूहड़ लगने लगती है, जड़, बासी जिसके शरीर से और कपड़ों से बासी गन्ध पड़ती रहती है, पिछड़ी घरेलू प्रमिला, और मुझे लगता है मेरे पैरों में जंजीरें पड़ी है।''[10]

मध्यवर्गीय व्यक्ति की यह नियति रही है कि वह अपने परिवेश में कभी भी संतुष्ट नहीं हुआ । एक बेहतर जिन्दगी के लिए वह प्रायः व्यवस्था के विकृत रूप के खिलाफ द्वन्द्व करता है। भले ही व्यवस्था का विकृत रूप पारिवारिक हो, सामाजिक हो, धार्मिक हो या नैतिक।[11]

नये–पुराने सामाजिक मूल्य, संस्कार, मान्यताएं, परम्पराएं, नीतियाँ एवं शहरी मानसिकता, अर्थाभाव, काम अतृप्ति, प्रेम की असफलता, सम्बन्धों का टूटना, पारिवारिक विघटन ये सब कड़ियाँ उपन्यास में महेन्द्र के साथ जुड़े हुए नजर आते हैं जो उसकी स्थिति को डांवांडोल बना देते हैं। महेन्द्र अपने पुराने संस्कारों से भी डरता नजर आता है लेकिन आधुनिक बोध से भी प्रभावित है। वह अपनी पत्नी को छोड़कर सुषमा से प्यार भी करना चाहता है और अन्दर ही अन्दर उसके मन और आत्मा का द्वन्द्व भी स्पष्ट होता है। वह सुषमा के फ्लैट से निकला है घर जाने के लिए, लेकिन प्रेम विहार के चिन्ह अपने शरीर पर देखकर डरता है कहीं प्रमिला देख न लें, और साथ ही कहता है–''मैनें कोई गुनाह नहीं किया है। एक छोटी–सी बात को तूल दिये जा रहा हूँ–थोड़ी ही देर में अपनें संस्कारों के प्रति जागृत हो जाता है, कहता है–''ऊँह पुराने संस्कार हैं।''[12]

महेन्द्र की डरपोक एवं कायर प्रवृत्ति का भी यहां पता चलता है जिसे वह संस्कारों की ओट में छिपना चाहता है। महेन्द्र सुषमा से प्रेम वाली बात एक दिन प्रमिला को बता देता है केवल भावावेश में आकर, लेकिन जब प्रमिला महेन्द्र को इसे छोड़ देने को कहती है एवं ऐसे अवैध सम्बन्धों को पाप की संज्ञा देती है तो वह पाप–पुण्य को व्यर्थ ठहराता हुआ कहता है–''यह पाप पुण्य सब बकवास है, प्रमिला। मेरा इसमें तनिक भी विश्वास नहीं है। पर मेरे संस्कार बहुत गहरे हैं उन्हीं के दबाव के कारण मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया है। मेरा पूरा हक है जैसे मैं जीना चाहूं जीऊं। औरत का भी हक है।''[13] ढोंगी और धूर्त महेन्द्र एक तरफ तो कहता है औरत का भी हक है अपने तरीके से जीने का लेकिन दूसरी तरफ जब उसकी अनुपस्थिति में नाटे द्वारा प्रमिला का हाथ दबाने वाली बात उसे पता चलती है तो वह क्रोधित हो उठता है और यह भी सोचता है कि उसे प्रमिला के चरित्र के बारे में कोई–न–कोई ठोस प्रमाण मिल गया है। इसी प्रकार वह सुषमा के बारे में भी सोचता है कहीं यह मेरे अतिरिक्त भी किसी से अभिसार करती

है....।'' महेन्द्र दोहरी मानसिकता से ग्रस्त मध्यवर्गीय व्यक्ति है। प्रमिला भारतीय हिन्दू नारी की साक्षात् मूर्ति है जो कि महेन्द्र की प्रताड़ना, मार–पीट एवं हर प्रकार की दुर्व्यवहार सहन करके भी हाथ जोड़ परमात्मा से उसके सुख की कामना करती है। वह महेन्द्र की हर ज्यादती को आंसुओं से स्वीकार करती है, उसका विद्रोह करना उसने नहीं सीखा। उस उपन्यास में महेन्द्र की काम–कुण्ठा भी दृष्टिगोचर होती है जो कि उसके समूचे पारिवारिक तनाव की जड़ बनती है एवं महेन्द्र के अन्दर अन्तर्द्वन्द्व पैदा करती है। वह कई जगह यह जाहिर भी करता है कि प्रमिला उसकी इच्छा को नहीं समझा सकती, सारा दिन पप्पू एवं घर का कार्य ही उसकी दिनचर्या बनकर रह गई है। वह महेन्द्र के प्रति उदासीन रहती है वह कहता है–'' औरत चाहे तो मर्द को मुट्ठी में रख सकती है। अगर यह सलीके वाली होती तो मैं सुषमा के पास जाता ही क्यों ? यह भी कोई ढंग है जीने का ? हर समय मेरे साथ बेरूखी की जाती है.....हर बात में यह बच्चे को बीच में घसीट लाती है। पप्पू, पप्पू, पप्पू''।[14]

इस उपन्यास में पति–पत्नी के बदलते संबंध, प्रेम, विवाह, इत्यादि का सूक्ष्म अंकन किया गया है। शिक्षित, बौद्धिक, मननशील महेन्द्र की पत्नी रूढ़ संस्कारों से आबाद्ध सीधी–सादी है। दाम्पत्य जीवन की घुटन, असन्तोष एवं अतृप्ति महेन्द्र को खिन्न बना देती है और उसे प्रमिला को घर से निकालने के लिए जिम्मेवार ठहराती है। पति–पत्नी में निष्ठा की भावना को झंझोड़कर वह स्वतंत्र जीवन–यापन करना चाहता है। जबकि प्रमिला अपने घर–परिवार–बेटे से बंधी हुई महेन्द्र को भी बांध लेना चाहती है लेकिन महेन्द्र आधुनिकता की चकाचौंध से या कहिये अन्तर्द्वन्द्व से इतना ग्रसित है कि इन भावात्मक बन्धनों को चकनाचूर कर डालता है। दाम्पत्य जीवन का आधार केवल परस्पर विश्वास की भावना होती है। यदि इसमें किसी भी प्रकार को भ्रम उत्पन्न हो जाए तो पारिवारिक जीवन की भित्ती ढह जाती है।

विवाह और तलाक के संदर्भ में

लेखक स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्हें प्रेमचन्द जी ने बहुत प्रभावित किया है। विवाह और तलाक के सम्बन्ध में भी उनके विचार प्रेमचन्द जी से मिलते हैं। ''कड़िया'' में महेन्द्र और प्रमिला की शादी भी उनकी पारस्परिक इच्छा से हुई है। महेन्द्र स्वयं प्रमिला से शादी करना चाहता था। आपसी तनाव में वह कहता है कि मेरी चाची कहती थी कि इससे शादी मत कर, लेकिन मैंने कहा–''नहीं, इसी के साथ शादी करूंगा।''[15] झगड़े, घुटन एवं तनाव के बहुत से दूसरे कारण हो सकते हैं'' लेकिन उनकी शादी स्वयं द्वारा तय की हुई थी उसमें किसी का भी हस्तक्षेप नहीं था। प्रमिला का भाई भी विवाह के खिलाफ था लेकिन प्रमिला की जिद्द रही होगी वह क्या कर सकता था–वह कहता है–''मैं इस विवाह के ही खिलाफ था, न जान, न पहचान। अब भुगते बहिन भी।''[16]

विवाह यहां पर स्वयं द्वारा तय किया गया है लेखक इसको स्वीकारते नजर आते हैं उन्हें ये पसन्द है। लेकिन इसके बावजूद भी दाम्पत्य जीवन में घुटन, तकरार, विघटन हो रहे हैं। जिससे पति–पत्नी के सम्बन्धों में दरारें आ रही हैं। महेन्द्र अपने द में नौकरी करने वाली सुषमा के साथ अभिसार में लिप्त होकर अपनी सीधी–सादी पत्नी को कष्ट दे रहा है और अन्त में उसे घर से निकाल भी देता है। वह सरल, सुशील एवं सद्गृहिणी है जो महेन्द्र से अलग संसार बसाने की सोच भी नहीं सकती और इसीलिए जब महेन्द्र उसे छोड़ देने की बात या शादी असफल होने की बात कहता है तो वह फफक–फफक कर रोने लगती है और कहती है–''क्या कहा तुमने? मुझे छोड़ दोगे? यह तुम कैसी बातें कह रहे हो तुम्हें शर्म नहीं आती। कभी शादियां भी टूटी हैं? और प्रमिला रो पड़ी।''[17]

महेन्द्र के छोड़ देने पर प्रमिला अपने पिता नारंग साहब के पास चली जाती है वहां पर भी उसे यही सलाह मिलती है कि कचहरी में मामला ले जाने की बजाए घर पर ही सुलझाया जाए। यद्यपि उसका पिता वकील है लेकिन उसे इस प्रकार से मामला सुलझाने की अनुमति वह भी नहीं देता। वह प्रमिला को कहता है–''तुम उसकी बहन से जाकर मिलो, सुलह–सफाई से कोई फैसला हो जाए तो अच्छा है, कचहरियों के मामले बड़े–टेढ़े होते हैं।''[18]

इस उपन्यास में लेखक ने दाम्पत्य जीवन के घोर नरक का चित्रण किया है लेकिन फिर भी उन्हें तलाक की सलाह कहीं भी नहीं दी। अन्त तक यही चाहा कि आपस में मिल जाए लेकिन विसंगति ये रही कि वे आपस में मिल न सके और प्रमिला को अन्त में स्वावलम्बी बनकर जीवनयापन करना पड़ा। महेन्द्र लम्पटता, धूर्तता एवं कायरता का परिचय देता हुआ उसे सब कुछ करने को मजबूर कर देता है। हीनता से ग्रसित महेन्द्र अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित है वह उसे छोड़कर भी अन्तर्मन से अलग नहीं कर सकता। जब वह पागल हो जाती है तो वहां भी देखने जाता है। जहां नाटा उसे अपनाने को कहता है। नाटा इससे पहले भी उसे इस कार्य के लिए झाड़ता रहता है और उपहास उड़ाता हुआ कहता है–''अबे उल्लू के पट्ठे, इश्क नाम की चीज न कभी दुनिया में थी न होगी बड़ा आशिक बनता है...बीवी को घर से बाहर किया, इतना प्रेम का भक्त था तो उससे ब्याह क्यों किया था?.. अबे उल्लू के पट्ठे उसे घर बुला ले और बच्चे को उसके हवाले कर। भलेमानुसों की तरह।''[19]

इस प्रकार समस्त उपन्यास में लेखक कहीं भी उनके तलाक की बात नहीं उठाता बल्कि यही कोशिश करता है कि वे आपस में मिल जाएं लेकिन महेन्द्र सभी प्रयत्नों पर पानी फेर देता है। यहां लेखक के प्रगतिशील विचार परम्परा के साथ समन्वय की तलाश करते नजर तो आते हैं, लेकिन ज्यादा दूर तक साथ नहीं निभा पाते और सटककर दूर खड़े दिखाई देते हैं।

नारी के संदर्भ में

इस उपन्यास में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। कहीं उसका स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाली आत्मनिर्भर स्त्री रूप, कहीं पति पर आश्रित रहने वाली अबला रूप, कहीं प्रेमिका तो कहीं, माँ का रूप। यहाँ पर इनका क्रमानुसार चित्रण किया जायेगा। भारतीय समाज में नारी को सामान्य रूप से पुरूष से कमजोर या नीचा समझा जाता है और इसी कारण महेन्द्र अपनी पत्नी को मारता–पीटता भी है। उसे हर प्रकार की

प्रताड़ना देता रहता है और अन्त में घर से बाहर निकाल देता है। नौकरी करने वाली स्त्रियों को भी समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। या कहिये कि पुरूष उसे उसकी कमजोरी समझकर उसे अपनी वासनापूर्ति का शिकार करने की ताक में रहता है। उस पर विभिन्न प्रकार के लांछन लगाये जाते हैं। यदि स्त्री किसी से भावात्मक प्यार भी करने लगे तो उस पर विश्वास नहीं किया जाता। पुरूष का सोचने–समझने का दृष्टिकोण इतना संकुचित है कि वह अपनी कमी को, हर स्त्री पर थोपना चाहता है व चरित्रहीनता का आरोप लगाकर अपनी कायरता छुपाना चाहता है।

कामकाजी नारी के संदर्भ में

''कड़ियां'' उपन्यास में लेखक ने सुषमा को एक कामकाजी महिला के रूप में चित्रित किया है जो दूर स्थित नगर से नौकरी करने आई है, वह महेन्द्र के दफ्तर में काम करती है। साथ ही महेन्द्र और सुषमा प्रेम–बन्धन में बंध जाते हैं, जिसमें सुषमा का अपनी तरक्की करवाना भी एक स्वार्थ है। लेकिन महेन्द्र इसको सच्चा समझकर अपने घर को तोड़ डालता है। कामकाजी महिलाओं को जिस दृष्टि से समाज देखता है उसका चित्रण इस उपन्यास में स्पष्ट किया गया है। सतवन्त दफ्तरों में काम करने वाली लड़कियों के बारे में बढ़–चढ़कर भाषण दे डालती है–''आजकल दफ्तरों की लड़कियां भी तो इन्हें दम नहीं लेने देतीं। बड़ी तेज हैं मुइयाँ, हमारे घर बरबाद करने पर तुली हुई हैं। इतनी बेधड़क हो गयी है, खुद मर्दों का हाथ पकड़ लेती है।''[20]

लेकिन महेन्द्र जो स्वयं अस्थिर विचारों में संलग्न रहता है एवं जिसे सुषमा पर पूर्ण विश्वास भी नहीं है वह प्रमिला की गलतफहमी को दूर करने के लिए सुषमा का पक्ष लेते हुए कहता है कि–''प्रमिला, कुछ समझा करो। सुषमा भी भले घर की लड़की है... यह हम लोगों का दम्भ है कि हम काम करने वाली स्त्रियों को बुरा समझते हैं।''[21]

इस प्रकार से लेखक ने नौकरी–पेशा औरतों की सामाजिक हालात का बड़ा सटीक चित्रण किया है। उनके बारे में यथार्थ दृष्टिकोण से काम लेते हुए उपन्यासकार ने उनकी स्थिति को अंकित किया है।

नारी प्रेम एवं कामवासना के संदर्भ में

नारी के प्रति पुरूष का रवैया हमेशा परिवर्तित होता रहता है। कभी वह भावावेग में नारी को देवी के रूप में मानने लगता है कभी वही स्त्री उसके लिए अविश्वास की मूर्ति बन जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में महेन्द्र और नाटा स्त्री को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। नाटा नारी को केवल कामवासना की पूर्ति का माध्यम मात्र समझता है उसी के शब्दों में–''सभी औरतों से भोग करते हैं औरत बनी ही भोग के लिए है।''[22] वह स्त्री को काम करने की मशीन मात्र ही मानता है। अपने रूढ़िवादी विचारों का भी परिचय देता हुआ कहता है–''हमारी भी घरवाली है, बाप ने गले मढ़ दी है लेकिन हमारे मिजाज नहीं मिलते फिर भी उसे पांच बच्चे दे दिये और इधर–उधर कभी लात–बात भी जमा देते हैं ताकि सीधी चलती रहे साली। हमें बेड–टी वक्त पर मिल जाए, हमारे कपड़े धुले–धुलाये अलमारी में आ जाएं बस और हमें क्या चाहिए।''

लेकिन एक महेन्द्र है जो न तो स्त्री को नाटे की भांति ही देखता न फिर उससे अच्छी स्थिति में, बल्कि स्वयं ही उलझा हुआ होने के कारण कभी सुषमा के कारण पत्नी के साथ अनबन करता है, कभी अन्तर्द्वन्द्व के कारण सुषमा के प्रेम में अविश्वास की झलक देखता है। उसमें निष्ठा की कमी ढूंढ़ता हुआ हर स्त्री को अविश्वास की नजरों से देखता है। सुषमा के फ्लैट से निकलने के बाद वह सड़क पर चलने वाली औरतों के बारे में सोचता है–''कि वह औरता जो अभी–अभी यहां से होकर गयी है, यही क्यों सड़क पर चलने वाली प्रत्येक स्त्री की स्वच्छ, सरल, चमकती आंखों के पीछे उसके अभिसारों की स्मृतियां बन्द पड़ी रहती हैं किसी को पता नहीं चल पाता कि उस स्त्री ने किस किसके साथ छल किया है।''[23]

सुषमा के संदर्भ में भी यही विचार उसके मन में बार–बार कौंधता है–''क्या मालूम सुषमा का भी कोई और मामला चल रहा हो।''[24] स्त्री–पुरूष के परस्पर अविश्वास का यही भाव आधुनिक जीवन का अभिशाप है जिसके कारण स्त्री और पुरूष सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग नहीं बन सकते और समाज संस्कृति और संस्कारों को क्षति पहुंचा रहे है। ऐसे संशय और दुविधाग्रस्त आत्माओं में निष्ठा भी तिरोहित हो जाती है, उधर सुषमा की स्थिति भी डांवांडोल है। वह अपनी पदोन्नति के कारण पहले महेन्द्र को जाल में फंसाती है फिर बूढ़े वर्मा को, यद्यपि वर्मा उसको पसन्द नहीं था लेकिन स्वार्थ हेतु सब कुछ करना पड़ता था। यों वर्मा काइयां था, दफ्तर की बात को बीच में नहीं आने देता था। एकाध बार सुषमा ने अपनी कन्फर्मेशन की बात चलायी तो वर्मा ने बड़े नपे–तुले डाईरेक्टरी ढंग से कह दिया–''तुम्हारा मामला महेन्द्र के कारण कुछ बिगड़ गया है, अभी ठहर जाओ वक्त आने पर ठीक कर दूंगा।''[25] समस्त उपन्यास में महेन्द्र का चरित्र एक छिछलापन लिये हुए है, उसे कामतृप्ति रहती है। इसी कारण वह सुषमा के पास जाता है तो कभी मिसेज भगत को वासना की दृष्टि से देखता है। वह अधूरेपन को दूसरों में भी ढूंढ़ने की कोशिश करता है। मिसेज भगत को वह यही सोचता है कि उसकी बिल्कुल वही स्थिति है। इसी कारण जब मिसेज भगत बच्चों को सैर के लिए ले जाने को कहती है तो महेन्द्र कहता है बच्चों का साथ ले जाना क्या ठीक रहेगा? महेन्द्र अपनी हीनता, अधूरेपन एवं अन्तर्द्वन्द्व को अन्त तक ढोता रहेगा। कभी प्रमिला को ही वह सबसे सुन्दर, कमनीय मानने लगता है तो कभी उसमें से उसे बासी एवं घरेलू सड़ी–गली बू आने लगती है।

नारी माँ के रूप में

स्त्री और पुरूष को जोड़ने वाली कड़ी सन्तान हुआ करती है। इस उपन्यास में प्रमिला को अपने बच्चे से पूर्ण प्यार है वह उसके लिए तड़पती, बिलखती दिखाई दी है। लेकिन दूसरी तरफ महेन्द्र को ऐसा कोई भी संबंध बांध नहीं सकता । वह उसे केवल उत्तरदायित्त्व समझता है रागात्मक सम्बन्ध नहीं। इसी कारण समस्त उपन्यास में महेन्द्र कहीं भी पप्पू के लिए तड़फता दिखाई नही देता है। उसके पढ़ाने की जिम्मेवारी जरूर अपने ऊपर ले लेता है। महेन्द्र जब कहता है–मेरी विवाह में या घरेलू जिन्दगी में कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी है, मैं आजाद रहना

चाहता हूँ, तुम भी आजाद रहो, पप्पू बोर्डिंग स्कूल में रहे, उसका खर्चा मैं दूंगा तो प्रमिला चिल्ला उठती है–''मुझे मेरा बच्चा दे दो उसके बिना मैं मर जाऊंगी, पप्पू के बना मैं मर जाऊंगी।''[26] इस प्रकार से माँ का वात्सल्य प्रेम बड़ा निश्च्छल होता है वह हर संकट सहकर भी बच्चे को अपने पास ही रखना चाहती है।

बाल–मनोविज्ञान के संदर्भ में

इस उपन्यास में यह भी दिखाने का सफल प्रयत्न हुआ है कि बच्चे का चहुंमुखी विकास केवल तब संभव है जब शुरू में उसे घर का स्वस्थ वातावरण मिले अन्यथा बच्चा पप्पू के समान अपराधी प्रवृत्ति का बन जाता है। जब महेन्द्र प्रमिला को पप्पू के ही सामने मार–पीट देता है तो पप्पू पर इसका सीधा दुष्प्रभाव पड़ता है, वह भी प्रमिला को सम्मान नहीं देता। वह बिस्तर गीला कर देता है एवं बच्चों के साथ भी लड़ता–झगड़ता रहता है। प्रमिला कहती भी है महेन्द्र से कि–''तुम बच्चे के सामने मुझे रूलाते हो बच्चा क्या सीखेगा।'' पप्पू अभी से ठुड्डे लगाने लगा है। उसकी कोई बात नहीं मानूं तो लातें लगाने लगता है।''[27]

यह कटु सत्य है कि जैसा घर का वातावरण होगा बच्चा उसी के अनुरूप संस्कार ग्रहण करेगा। महेन्द्र एवं प्रमिला के तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन का दुष्प्रभाव पप्पू पर इतना अधिक पड़ा कि उसमें अच्छे स्कूल में डालने पर भी सुधार नहीं आया। महेन्द्र उसे चॉकलेट देता है तो पप्पू उसे इस ढंग से खाता है कि सारे कपड़े गंदे कर लेता है और डर के कारण निक्कर में ही पेशाब कर देता है इस पर झल्लाकर महेन्द्र कहता है–''इसको स्कूल में दाखिल हुए छः महीने बीत चुके लेकिन वह अभी तक न तो स्कूल का रहन–सहन सीख पाया था न अपने पुराने भौंडे संस्कार छोड़ पाया।''[28]

निष्कर्ष

पप्पू और मिसेज भगत के बच्चे घूमने जाते हैं तो वह वहां भी उसके लड़के की कमीज फाड़ डालता है और मुंह नोच देता है तो इस प्रकार पप्पू के ऊपर उसके घर के अस्वस्थ वातावरण का बड़ा दुष्प्रभाव पड़ा। जिससे उसे कहीं भी व्यवस्थित होने में परेशानी हो रही थी। लेखक ने यह स्वीकारा है कि बच्चे का समस्त विकास–केवल सुखी परिवार में ही संभव है। वरना बच्चा हीन भावना से ग्रस्त होने के साथ–साथ अपराधी प्रवृत्ति का शिकार भी हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ0 श्यामसुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर (दसवां भाग), पृ0 सं0 4968*
2. *श्री शम्भुरत्न त्रिपाठी, समाजशास्त्र के आधार, पृ0 सं0 33*
3. *सर मोनियर विलियम, ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, संस्कृरण 1956, पृ0 सं0 1153*
4. *दि रेन्डम हाउस डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लैंग्वेज, पृ0 सं0 1351*
5. *सेम्युअल कोइंग, सोसियोलोजी, पृ0 सं0 21*
6. *चेतयते उनया इति। चित् संज्ञानेन्यास ग्रन्थति, शब्द कल्पद्रुम, द्वितीय काण्ड, पृ0 सं0 459*
7. *सम्पादक रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, दूसरा खंड, पृ0 सं0 274*
8. *डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम संस्करण, पृ0 सं0 289*
9. *हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, डॉ0 मंजुला गुप्ता, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्रकाशन संस्करण 1986, पृ0 सं0 54*
10. *भीष्म साहनी, कड़ियाँ, पृ0 सं0 16*
11. *हिन्दी उपन्यास : समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, डॉ0 मंजुला गुप्ता, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्रकाशन संस्करण 1986, पृ0 सं0 54*
12. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 10*
13. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 35*
14. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 54*
15. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 55*
16. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 107*
17. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 55*
18. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 126*
19. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 111*
20. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 72*
21. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 68*
22. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 111*
23. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 26*
24. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 17*
25. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 153*
26. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 139*
27. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 65*
28. *कड़ियाँ, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 सं0 179*